प्रथम अध्याय

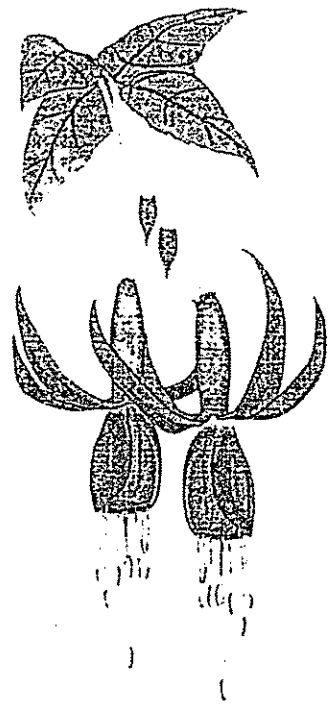

शोध परिचय

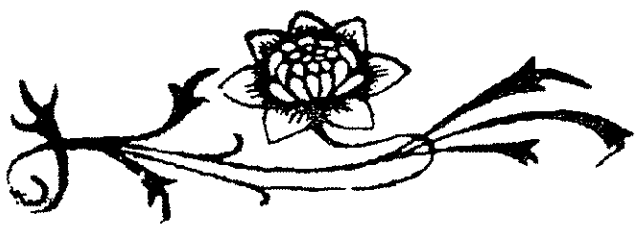

प्रथम अध्याय
शोध परिचय

1.0 प्रस्तावना :–

शिक्षा वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा मानव के अभ्यास से परिवर्तनशील शक्तियों को अच्छी आदतों द्वारा तथा कलात्मक ढंग से निकाले गये साधनों द्वारा पूर्णता प्रदान की जाती है तथा जिन, साधनों का प्रयोग कोई भी व्यक्ति अपने लिए या दूसरे की सहायता के लिए निर्दिष्ट उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए प्रयुक्त करता है।

पेस्तालाजी (1782) के अनुसार "मानव की आन्तरिक शक्तियों का स्वाभाविक सामंजस्य पूर्ण एवं प्रगतिशील विकास ही शिक्षा है।"
(उदियमान भारतीय समाज में शिक्षक–एन.आर.एस. सक्सेना (पृष्ठ नं. 61))

शिक्षा का क्षेत्र अत्यन्त व्याप्त है परन्तु व्यक्ति के जीवन में प्राथमिक शिक्षा का महत्व सबसे अधिक है। प्राथमिक शिक्षा किसी भी राष्ट्र की प्रगति का मूल आधार है। यह पहली सीढ़ी है जिसे सफलतापूर्वक पार करके ही कोई राष्ट्र अपने अभिष्ट लक्ष्य तक पहुंच सकता है। राष्ट्रीय जीवन के साथ जितना घनिष्ठ सम्बन्ध प्राथमिक शिक्षा का है उतना माध्यमिक या उच्च शिक्षा का नहीं है। राष्ट्रीय विचारधारा एवं चरित्र का निर्माण करने में जितना महत्वपूर्ण स्थान प्राथमिक शिक्षा का है उतना किसी दूसरी सामाजिक, राजनैतिक या शैक्षणिक गतिविधि का नहीं है। प्राथमिक शिक्षा का सम्बन्ध किसी विशेष व्यक्ति या वर्ग से न होकर देश की पूर जनसंख्या से होता है। इसका हरी कदम पर हर व्यक्ति के जीवन से सम्पर्क होता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि सब व्यक्तियों की शिक्षा अथवा जनसाधारण की शिक्षा ही राष्ट्रीय प्रगति का मूलाधार है। इसका उत्थान करके ही हमारे देश का

विकास हो सकता है। इस प्रसंग में स्वामी विवेकानन्द (1890) के अग्रांकित विचार सत्य से भरपूर हैं :-

"मेरे विचार से जनसाधारण की अवहेलना करना महान राष्ट्रीय पाप है और हमारे पतन के कारणों में से एक है। सब राजनीति उस समय तक विफल रहेगी, जब तक कि भारत में जनसाधारण को एक बार फिर भली प्रकार शिक्षित87 नहीं कर लिया जायेगा।"

(उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, एन.आर.एस. सक्सेना एवं शिखा चतुर्वेदी, पृष्ठ नं. 354.)

अतः इन विचारों को ध्यान में रखते हुए जब सन् 1950 को हमारे देश का संविधान लागू हुआ तो संविधान की धारा 45 के अन्तर्गत यह कहा गया, "राज्य इस संविधान के लागू होने के समय से दस वर्ष के भीतर 6 से 14 आयु वर्ग के सभी बच्चों को निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा देने का प्रयास करेगा।" परन्तु दुर्भाग्यवश यह लक्ष्य हम आज भी प्राप्त नहीं कर सके है परन्तु ऐसा नही है कि इस दिशा में प्रयास नहीं किये वरन् इस दिशा में निरन्तर प्रयास किये जाते रहे हैं, जैसे कि कोठारी आयोग (1964-66) ने शिक्षा के महत्व को प्रतिपादित करते हुए बताया "शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य सामाजिक एवं राष्ट्रीय एकता को मजबूत बनाना है।" इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए हमें प्राथमिक शिक्षा का लोक व्यापीकरण करना होगा, परन्तु प्राथमिक शिक्षा के लोकव्यापीकरण में मुख्यतः तीन पक्ष बाधक है।

(1) अपव्यय (2) अवरोधन (3) निम्न गुणात्मक स्तर।

प्राथमिक शिक्षा में अपव्यय एवं अवरोधन की चर्चा करते हुए भारतीय शिक्षा आयोग (1966) ने कहा -

"सिरदर्द और बुखार के समान अपव्यय और अवरोध व स्वयं रोग नही है। वे वास्तव में शिक्षा व्यवस्था के अन्य रोगों के लक्षण हैं तथा हमारी शिक्षा व्यवस्था में अपव्यय और अवरोधन की मात्रा अत्यन्त विशाल है।"

भारतीय शिक्षा आयोग द्वारा दिये गये सुझावों को ध्यान में रखते हुए राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में अपव्यय व अवरोधन कीर समस्या को अत्यन्त गंभीरता से लिया गया तथा सुझाव दिया कि बीच में पढ़ाई छोडकर जाने वाले बच्चों की समस्या के समाधान को उच्च प्राथमिकता देने और वड़ी सावधानीपूर्वक तैयार की गई नीतियों के अनुसार सूक्ष्म आयोजन पर आधारित व्यवस्था को अपनाया जाये और देशभर में निचले स्तर से लागू किया जाये, ताकि बच्चों को स्कूल में शिक्षा जारी रखने के लिए सुनिश्चित किया जा सके।

इस प्रकार प्रशासनिक तौर पर अपव्यय एवं अरोधन की मात्रा कम की जा सकती हैं।

1.1 प्राथमिक शिक्षा का निम्न गुणात्मक स्तर एक समस्या :-

देश की प्रतिबद्धता के अनुरूप सभी बच्चों को प्राथमिक शिक्षा प्रदान करने के लिए स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात्, शैक्षिक सुविधाओं का अत्याधिक प्रसार हुआ है। देश में प्राथमिक विद्यालयों की संख्या में अत्याधिक वृद्धि हुई है। इस व्यापक प्रसार के फलस्वरूप जिन शैक्षिक सुविधाओं का प्रसार हुआ है वे, संस्थागत संरचना, अध्ययन, अध्यापन प्रक्रियाओं तथा विद्यालयों से उत्तीर्ण होकर निकले छात्रों की योग्यता की दृष्टि से, गुणवत्ता में व्यापक रूप से भिन्न है। गुणवत्ता की यह भिन्नता कुछ राज्यों, ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्र के विद्यालयों, सरकारी तथा गैर-सरकारी संस्थाओं द्वारा संचालित विद्यालयों आदि में अधिक दिखाई देती है। गुणवत्ता सम्बन्धी इस असंगत

स्थिति ने प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में निम्न गुणात्मक स्तर की समस्या को जन्म दिया।

1.2 प्राथमिक शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार के प्रयास :-

गुणवत्ता सम्बन्धी असंगत स्थिति के सुधार की अविलम्ब आवश्यकता को ध्यान में रखकर राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में इन बातों पर शीघ्र ध्यान देने का आहवान किया गया है :-

1. विद्यालयों के अनाकर्षक परिवेश, भवनों की असंतोषजनक दशा और शिक्षण सामग्री के अभाव की दृष्टि से सुधार।

2. उन न्यूनतम अधिगम स्तरों का निर्धारण जिनकी विभिन्न शिक्षा स्तरों को पूरा करने वाले, सभी छात्रों को संप्राप्ति होनी चाहिए। आठवीं पंचवर्षीय योजना तैयार करने के लिए गठित प्रारंभिक बाल्यावस्था और प्राथमिक शिक्षा के कार्यदल की रिपोर्ट में, इस नीति निर्देश को ध्यान में रखते हुए कहा गया -

लक्ष्यों का निर्धारण केवल सहभागिता की दृष्टि से नहीं, बल्कि गुणवत्ता और प्रतिफलों की दृष्टि से भी किए जाने की आवश्यकता है।

आठवीं पंचवर्षीय योजना के दौरान उन्नत संरचना एवं अध्यापक शिक्षा और अधिगम सामग्री की गुणवत्ता एवं परिभाषा में यथेष्ट सुधार के द्वारा शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार लाना हमारा उद्देश्य होना चाहिए। प्रतिफल की दृष्टि से यह सुनिश्चित करना होगा कि प्राथमिक तथा उच्च प्राथमिक स्तरों की सम्प्राप्ति के संदर्भ में, न्यूनतम अधिगम स्तरों का निर्धारण किया जाए, और एक उपयुक्त मूल्यांकन प्रणाली तैयार की जाए, जिससे यह सुनिश्चित हो सके कि, कम से कम, निर्धारित अधिगम स्तरों की प्राप्ति तो होगी ही। इस संदर्भ में भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्रालय के शिक्षा

विभाग ने 5 जनवरी 1990 के आदेश क्रमांक 74/3/89-डेस्क (टी.ई.) द्वारा न्यूनतम अधिगम स्तर समिति का गठन किया। इस समिति के विचारार्थ विषय निम्नलिखित थे -

1. **कक्षा 3 और 5 के लिए न्यूनतम अधिगम स्तरों** का निर्धारण।
2. शिक्षार्थी के व्यापक मूल्यांकन और जांच पद्धति की सिफारिश।
3. अधिगम के असंज्ञानात्मक, क्षेत्रों पर विचार तथा ऐसे नए सुझाव जिनके आधार पर इन क्षेत्रों में अध्यापन में सुधार लाया जा सके।

समिति को इस बात से भी अवगत कराया गया कि विचारार्थ विषय का सम्बन्ध शिक्षा की औपचारिक और अनौपचारिक दोनों प्रणालियों से है।

प्रारंभिक शिक्षा में गुणात्मक सुधार लाने हेतु समय-समय पर विभिन्न शिक्षा आयोगों का गठन किया गया। शिक्षा में गुणात्मक सुधार लाने हेतु इन आयोगों ने अनेक सुझाव दिये। कुछ लक्ष्य निर्धारित किये, उन लक्ष्यों को हासिल करने हेतु जो विभिन्न बिन्दु निर्धारित किए उनमें से न्यूनतम अधिगम स्तर सबसे महत्वपूर्ण बिन्दु हैं।

इन आयोगों ने कहा कि हमारा लक्ष्य प्रत्येक विषय का निम्न गुणात्मक स्तर प्राप्त करना होगा चाहिए, तब कहा हम शिक्षा में गुणात्मक सुधार कर पायेंगे।

1.3 न्यूनतम अधिगम स्तर का अर्थ :-

न्यूनतम अधिगम स्तर के प्रत्यय में तीन शब्दों का प्रयोग हुआ है - न्यूनतम, अधिगम एवं स्तर।

1. न्यूतम का अभिप्राय कुछ कम स्तर या निम्न स्थिति की शिक्षा प्रदान करने से नही है, वरन् छात्रों में उनके विकास के लिये अत्यन्त आवश्यक दक्षताओं का विकास पारंगतता के स्तर पर कराने से है।

2. अधिगम अथवा सीखने का अभिप्राय होना है - पूर्व नियोजित, शैक्षणिक कार्यक्रमों के द्वारा बालकों के व्यवहार में सकारात्मक परिवर्तन लाना। ये परिवर्तन बालक के विकास अभिवृद्धि अथवा आकस्मिक घटना के फलस्वरूप पैदा नहीं होंगे वरन् ये परिवर्तन शैक्षणिक क्रिया के परिणाम होंगे, जो विद्यार्थी के व्यवहारों (गुणात्मक, क्रियात्मक, भावात्मक) में स्थाई रूप से देखे जा सकेंगे। बी.एस. बलूम (1966) का कथन है कि "शिक्षण की क्रियाओं, विधियों व्याख्यान, गृह कार्य, वाद-विवाद, आदि का उद्देश्य छात्रों के ज्ञानात्मक, भावात्मक तथा क्रियात्मक पक्षों के स्तरों का विकास करना होता है।" (शिक्षा तकनीकी (आर.ए. शर्मा))

3. स्तर का अभिप्राय कि इन परिवर्तनों की उपलब्धियों की सीमा क्या है और जो भी व्यवहार बच्चों ने सीखा है। उसमें कुशलता की पारंगतता की माप क्या है? जैसे किसी कार्य या क्रिया को कोई विद्यार्थी 70 प्रतिशत सफलता के साथ कर सकता है तो माना जायेगा कि उसके सीखने का स्तर 70 प्रतिशत है।

स्कूल में शिक्षार्थियों को सीखने के लिये कुछ विशेष अनुभव दिये जाते हैं, जैसे पढ़ना, लिखना, निरीक्षण करना, परीक्षण करना, उत्सव में भाग लेना आदि।

जब उनकों ये अनुभव दिये जाते हैं, तब वे अधिगम की प्रक्रिया से गुजरते हैं। इनको अधिगम अनुभव कहते हैं।

अधिगम की प्रक्रिया के फलस्वरूप शिक्षार्थियों में ज्ञान, बोध, कौशलों, भावनाओं, रूचियों, मनोवृत्तियों तथा आदर्शों का विकास होता है - ये अधिगम प्रतिफल कहलाते हैं, जिन अधिगम प्रतिफलों को प्राप्त किया जाना है, उसको ध्यान में रखकर ही शिक्षार्थियों, को अधिगम अनुभव दिये जाते हैं।

न्यूनतम अधिगम स्तर वे अधिगम प्रतिफल हैं जिन्हें प्राप्त किया जाना है। अधिगम प्रतिफलों का दक्षताओं के रूप में उल्लेख किया गया है। दक्षतायें वे पूर्व निर्धारित अधिगम लक्ष्य है, जिनकी शिक्षार्थी के व्यवहार में अपेक्षा की जाती है। शिक्षार्थी उस दक्षता के अन्तर्गत उल्लेख की गई क्रियाओं को करने में सक्षम हो सकेगा।

न्यूनतम अधिगम स्तर, कार्यक्रम के उद्देय को प्राप्त करने के लिये यह आवश्यक है कि प्रत्येक दक्षता का पूर्ण विकास किया जाये। तात्पर्य यह है कि सभी शिक्षार्थियों या लगभग सभी शिक्षार्थियों में सभी दक्षताओं या लगभग सभी दक्षताओं का विकास पूरी तरह आवश्यक है। यदि सभी छात्र सभी दक्षताओं को पूरी तरह प्राप्त नहीं कर पाते तो इतना तो अवश्य हो कि कक्षा के 80 प्रतिशत शिक्षार्थी कक्षा के लिये निर्धारित की गई दक्षताओं में से 80 प्रतिशत, दक्षतायें पूरी तरह प्राप्त कर लें।

1.4 न्यूनतम अधिगम स्तर का निर्धारण :-

न्यूनतम अधिगम स्तरों के निर्धारण की आवश्यकता का उदगम इस बुनियादी उद्देश्य से होता है कि एक समान स्तर की शिक्षा सभी बच्चों को दी जानी चाहिए चाहे वे किसी जाति, पंथ, स्थान या लिंग के हों। न्यूनतम अधिगम स्तर सम्बन्धी कार्य की पृष्ठभूमि में नीति निर्धारण का केन्द्र विन्दु वर्तमान विषमताओं को दूर करना है।

बच्चों की विकासात्मक आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए गुणवत्ता को समता से जोड़ना है। खासकर उस वर्ग को जो हमारे समाज के असुविधा ग्रस्त तथा वंचित वर्ग के हैं, बीच में पढ़ाई छोड़ देते हैं कहीं न कहीं काम कर रहे हैं और जिनमें लड़कियाँ सम्मिलित हैं, जो इस देश की विद्यालय जाने वाले आयु वर्ग की जनसंख्या का बड़ा भाग है और जिनकी निकट भविष्य में संरचित शिक्षा के अन्तर्गत केवल प्राथमिक शिक्षा का ही

अवसर मिल सकेगा। प्रत्येक शिक्षा स्तर की समाप्ति पर बच्चों को क्या सीख लेना चाहिए। यह आधारभूत उद्देश्य न्यूनतम, अधिगम स्तरों के निर्धारण में विशेष महत्व रखता है।

1.5 न्यूनतम अधिगम स्तरों का महत्व :-

न्यूनतम अधिगम स्तर के निर्धारण से कई बुनियादी बातों में सहायता मिलती है शिक्षण अधिगम के लक्ष्यों के रूप में निश्चित और स्पष्ट होना दक्षताओं के रूप में बड़े स्पष्ट लक्ष्य शिक्षक के सम्मुख होंगे, इसमें शिक्षकों को कार्य की नई दिशा मिलेगी और उनके सारे प्रयास निर्धारित दक्षताओं की संप्राप्ति पर ही केन्द्रित होंगे। शिक्षक विशिष्ट दक्षता के अनुरूप अपनी विषयवस्तु व शिक्षण विधि निश्चित कर लेते हैं तद्नुसार आवश्यक सहायक सामग्री जुटाकर ब्यूह रचना कर सकते हैं। अधिगम स्तर निर्धारण से छात्रों की जांच तथा वस्तुपरक मूल्यांकन में भी शिक्षकों को सहायता मिलती है।

पूर्व में किये गये अध्ययनों से यह पता चलता है कि प्रारंभिक स्तर पर अन्य विषयों की तुलना में विद्यार्थी गणित विषय में काफी पीछे हैं। गणित विषय मनुष्य के दैनंदिन जीवन से जुड़ा हुआ है। बिना इसके ज्ञान के सफल जीवनापन संभव नहीं है। अतः यह आवश्यक हो जाता है कि छात्र इस विषय का ज्ञान रखें।

1.6 प्रारंभिक स्तर पर गणित का महत्व :-

मानव ने आज प्रत्येक क्षेत्र में विशेष उपलब्धियाँ प्राप्त की है; चाहे वह शिक्षा का क्षेत्र हो, चाहे स्वास्थ्य व चिकित्सा का, चाहे औद्योगिक विकास का, चाहे कृषि का, चाहे मनोरंजन का। इन सभी क्षेत्रों में जो उन्नति हुई है, उसमें गणित का योगदान प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप में काफी महत्वपूर्ण रहा है।

गणित के महत्व को हम निम्न प्रकार समझ सकते हैं :-

- **मनुष्य के विचारों एवं मनोभावों को प्रकट करने में गणित का महत्वः-**

बालक जब 2 या 3 साल का होता है तभी से उसकी गणित की शिक्षा घर पर ही प्रारंभ हो जाती है। वह किसी वस्तु को प्राप्त करते समय कम व अधिक के लिए कहना है तथा गिनती करके भी देखना है। इस प्रकार वस्तुओं को प्राप्त करने के लिए अपने विचारों को गणित के माध्यम से प्रकट करता है।

- **गणित का दैनिक जीवन में महत्व :-**

मनुष्य को अपने दैनिक जीवन में कदम-कदम पर गणित के ज्ञान की आवश्यकता पड़ती है। एक गृहणी को धोबी से कपड़े लेते व देते समय उन्हें गिनना पड़ता है। विभिन्न खाद्य सामग्री बनाते समय मसाले, तेल आदि के अनुपात का ध्यान रखना पड़ता है।

- **गणित का विज्ञान में उपयोग व इसका सामाजिक महत्व :-**

आज विज्ञान का सभी शाखाओं में गणित का उपयोग अनिवार्य हो गया है। आज का भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, भूगर्भ विज्ञान, इन्जिनियरिंग, खगोलशास्त्र; यहां तक कि जीव विज्ञान भी गणित की सहायता के बिना फल-फूल नहीं सकता। आज की शताब्दी का सबसे महत्वपूण उपलब्धि 'मनुष्य का चांद पर विजय' भी गणित की सहायता से ही प्राप्त हो सकी है।

- **चारित्रिक मूल्य कायम करने में गणित का महत्व :-**

मनुष्य में कुछ अच्छी आदतें होती हैं जो उसक चरित्र की बुनियाद होती है। गणित की शिक्षा मनुष्य में इन्हीं आदतों को डालती है तथा उनका विकास करती है। गणित के विद्यार्थी सत्य को सत्य व असत्य को असत्य हो बतलाते हैं; वे सही बात को सही ही कहते हैं तथा गलत को गलत। इस प्रकार गणित का अध्ययन मनुष्य में सत्य बोलने और सही कार्य करने की आदत डालता है। गणित का अध्ययन करने वाला स्पष्ट वक्ता होता है। गणित हमें शुद्धता सिखाता है।

- **गणित शिक्षण का बौद्धिक महत्व :-**

जब कोई गणितिय समस्या बालक के सामने आती है तो उसका मस्तिष्क उसे समझने व हल करने में क्रियाशील हो जाता है। इस प्रकार प्रत्येक गणितिय समस्या का हल खोजने के लिए मानसिक प्रयास की आवश्यकता होती है।

जब बालक का मस्तिष्क क्रियाशील होता है तो उसमें विचार करना, तर्क करना, विश्लेषण और विवेचन करना आदि क्रियाऐं स्वतः ही संचालित हो जाती हैं। इस प्रकार की क्रियाओं से बालक का बौद्धिक विकास होता है।

इसी तरह गणित विषय में गुणवत्ता स्तर प्राप्त करने हेतु इस विषय में न्यूनतम अधिगम स्तर प्राप्त करने पर बल दिया जा रहा है।

1.7 गणित में न्यूनतम अधिगम स्तर :-

प्रत्येक कक्षा के लिए आधारभूत गणितिय प्रत्ययों को शैक्षणिक क्रम के अनुसार सूचीबद्ध नहीं किया गया है, बल्कि उन्हें गणितिय दक्षताओं के निम्नलिखित पांच क्षेत्रों के अनतर्गत वर्गाकृत किया गया है :-

1. पूर्ण संख्याओं एवं संख्याओं को समझना।

2. पूर्ण संख्याओं को जोड़ने, घटाने, गुणा व भाग करने की योग्यता।

3. मृदा, लंबाई, भार, धारिता, क्षेत्र एवं समय की कठिनाईयों को उपयोग करने व इनसे सम्बन्धित दैनिक जीवन की साधारण समस्याओं को हल करने की योग्यता।

4. भिन्न, दशमलव एवं प्रतिशत का प्रयोग करने की योग्यता।

5. ज्योमितिय आकारों एवं स्थानिक सम्बन्धों को समझना।

1.8 अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्व :-

पूर्व में विभिन्न शोधकर्ताओं द्वारा न्यूनतम अधिगम स्तर के सम्बन्ध में जो शोधकार्य किये गये उनमें प्राप्त निष्कर्ष यह बताते हैं कि ऐसे बच्चों का एक विचारणीय प्रतिशत है जिन्हें गणित विषय में कई प्रकार की कठिनाईयाँ होती हैं। इसी प्रकार के अध्ययन, जो प्राथमिक, माध्यमिक स्तर पर किये गये वे भी सार्थक रूप से यह प्रदर्शित करते हैं कि विद्यार्थियों को गणित विषय में कई प्रकार की कठिनाईयाँ होती है। अध्ययनकर्ता ने कुछ सेवाकालीन शिक्षकों के सम्पर्क में आने के बाद यह महसूस किया कि कुछ सेवाकालीन शिक्षकों में गणित के मूल प्रत्ययों तथा कौशलों के उचित ज्ञान का अभाव हैं। प्राथमिक स्कूल के विद्यार्थी गणितिय समस्या हल करते समय उन्हें कई प्रकार की कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। इसके कई कारण है, जिसमें से एक कारण शिक्षकों द्वारा विद्यार्थियों को गणित के मूल प्रत्ययों का उचित ज्ञान प्रदान ना करना है।

बच्चों की कठिनाईयों को तुरन्त दूर करने के लिए अतिआवश्यक है कि-

1. ऐसे बच्चों की पहचान करना, जिन्हें गणित में कठिनाई होती है।

2. बच्चों के कठिनाईयों के लाक्षणिक स्तर तथा उसके कारण व सह-सम्बन्धित कारकों को समझकर उसका निदान करना।

3. शिक्षकों में ऐसी दक्षताओं का विकास करना, जिससे की वह गणित शिक्षण हेतु उचित क्रियाविधि का चयन कर सके।

4. ऐसी निर्देशानात्मक सामग्री विकसित की जाये तो गणित शिक्षण में शिक्षक तथा अभिभावक दोनों के लिए उपयुक्त है।

5. प्राथमिक शिक्षण प्रशिक्षण के पाठ्यक्रम में सामान्य और मुख्यतः गणित शिक्षण के सैद्धान्तिक और प्रायोगिक पाठ्यक्रम में सुधार किया जाना चाहिए।

6. उपचारात्मक कार्यक्रम हेतु प्रबन्ध किये जाने चाहिए तथा शिक्षकों में उपचारात्मक निर्देशनात्मक सामग्री विकसित करने के कौशलों का विकास किया जाना चाहिए।

अतः शिक्षक को चाहिए कि वह अध्ययनार्थी को अध्ययनार्थी की विशेषताओं को अध्ययनार्थी की अध्ययन में कठिनाईयों को तथा उसकी पूर्व आवश्यकताओं को समझेते और तद्नुसार उचित क्रियाविधि का चयन कर विद्यार्थियों के लिए शिक्षण व्यवस्था करें। तभी विद्यार्थियों के उपलब्धि स्तर में गुणात्मक वृद्धि संभव हो सकती है।

शोधकर्ता ने ऊपर वर्णित तथ्यों को ध्यान में रखते हुए एक ऐसी ही समस्या का चयन किया, जिसका कथन, अग्रलिखित है।

1.9 समस्या कथन :-

"कक्षा-5 के विद्यार्थियों की गणित उपलब्धि पर उपचारात्मक शिक्षण का प्रभाव" - एक अध्ययन।

1.10 प्रस्तुत शोध अध्ययन में प्रयुक्त शब्दावली एवं अर्थ :-

दक्षता :- दक्षता से हमारा तात्पर्य किसी भी विषय के लिए निर्धारित उन न्यूनतम अधिगम स्तरों से है, जो किसी कक्षा को उत्तीर्ण करने के पश्चात विद्यार्थी में लगभग पूर्णतः विकसित हो जाये। दूसरे शब्दों में दक्षताऐं वे पूर्व निर्धारित अधिगम लक्ष्य है, जिनकी शिक्षार्थी के व्यवहार में अपेक्षा की जाती है। शिक्षर्थी उस दक्षता के अंतर्गत उल्लेख की गई क्रियाओं को करने में सक्षम हो सके।

उपचारात्मक शिक्षण :- कक्षा शिक्षण कितना ही अच्छा क्यों न हो, लगभग 20-25 प्रतिशत विद्यार्थियों की कठिनाईयाँ दो विषय के वीच रिक्तता या किसी कारण से रह जाती है समय पर इसका निवारण आवश्यक है अन्य था इसका दीर्घकालीन त्रुटि या कठिनाई बन जाना स्वाभाविक है। उपचारात्मक शिक्षण अध्ययन-अध्यापन प्रक्रिया का महत्वपूर्ण अंग है।

उपचारात्मक शिक्षण के द्वारा छात्रों की आधारभूत त्रुटियों और कठिनाईयों को दूर कर उन्हें प्रोत्साहन और मार्ग के द्वारा अध्ययन-अध्यापन के वांछित स्तर पर लाया जाता है। इससे कमजोर और पिछड़े छात्र कक्षा में अध्यापन का अधिकतम लाभ लेकर अन्य छात्रों के साथ प्रगति कर सकते है।

उपचारात्मक शिक्षण के उद्देश्य के संबंध में योकम व सिम्पसन ने लिखा है :-

"उपचारात्मक शिक्षण का उद्देश्य – सब प्रकार की अधिगम संबंधी 'त्रुटियों को शुद्ध करने के लिए प्रभावशाली विधियों का विकास करना है।"

उपचारात्मक शिक्षण आवश्यकतानुसार वैयक्तिक अथवा सामूहिक हो सकता है। निदानात्मक परीक्षण और उपचारात्मक शिक्षण पाठ्यक्रम के किसी अंश की इकाई या सम्पूर्ण उप–इकाई की समाप्ति के उपरांत चुना जा सकता है। उपचारात्मक शिक्षण के लिए विधि या स्टेट का उपयोग विषय और इसकी इकाई या उपइकाई पर निर्भर करता है। उपलब्ध साधन, समय और कमजोर छात्रों की संख्या पर भी उपचारात्मक विधियों का उपायों के चुनाव पर विचार कर लेना उचित होगा।

उपचारात्मक विधि को वैयक्तिक और सामूहिक श्रेणी में बांटा जा सकता है। तथा उपचारात्मक शिक्षण हेतु पुनरीक्षण, वैकल्पिक शिक्षण विधि, दृश्य श्राव्य सामग्री शैक्षिक खेल और भ्रमण, संदर्भ पुस्तक या अन्य सामग्री, पारितोषिक और प्रशंसा का उपयोग, भावात्मक अभ्यास अनुशिक्षण (ट्यूरिंग) सह–पाठी अध्ययन समूह आदि विधियों में से शिक्षक अपना अनुभव और छात्रों की कठिनाइयों के अनुसार उपयुक्त विधि उपचारात्मक शिक्षण के लिए प्रयोग कर सकते है।

उपचारात्मक शिक्षण के परिणामों की उपयोगिता एवं अनुउपयोगिता के विषय में केवल छात्रों का निर्णय ही मान्य है। यदि इस शिक्षण से लाभान्वित हुए है, तो इसको उपयोग माना जा सकता है, अन्यथा नहीं।

उपरोक्त विवरण के आधार पर उपचारात्मक शिक्षण को निम्न रूप में परिभाषित किया जा सकता है :-

"उपचारात्मक शिक्षण उस विधि को खोजने का प्रयत्न करता है, जो अपनी कुशलता या विचार की त्रुटि को दूर करने में सफलता प्रदान करें।"

"उपचारात्मक शिक्षण, वास्तव में, उत्तम शिक्षण है, जो छात्र को अपनी वास्तविक स्थिति का ज्ञान प्रदान करता है और जो सुप्रेरित क्रियाओं द्वारा उसको अपनी कमजोरियों के क्षेत्रों में अधिक योग्यता की दिशा में अग्रसर करता है।"

1.11 शोध के उद्देश्य :-

शोध को दिशा निर्देशित करने के लिये शोधकर्ता ने कुछ उद्देश्यों का निर्धारण किया है।

प्रस्तुत अध्ययन के उद्देश्य निम्नलिखित है :-

1- अध्ययन हेतु चयनित दक्षताओं में विद्यार्थियों द्वारा की जाने वाली सामान्य त्रुटियों की पहचान करना।

2- अध्ययन हेतु चयनित दक्षताओं में विद्यार्थियों द्वारा की जाने वाली सामान्य त्रुटियों के कारणों को जानना।

3- अध्ययन हेतु चयनित दक्षताओं के लिए क्रियाक्रमित उपयुक्त उपचारात्मक शिक्षण कार्यक्रम तैयार करना।

4- अध्ययन हेतु चयनित दक्षताओं में विद्यार्थियों द्वारा की जाने वाली सामानय त्रुटियों को कम करने के लिए क्रियाक्रमित उपचारात्मक शिक्षण कार्यक्रम का क्रियान्वयन करना।

5- अध्ययन हेतु चयनित दक्षताओं में विद्यार्थियों द्वारा की जाने वाली सामान्य त्रुटियों को कम करने में क्रियाक्रमित उपचारात्मक शिक्षण के प्रभाव का अध्ययन करना।

1.12 शोध परिकल्पनाऐं :-

इस अध्ययन की परिकल्पनाऐं निम्नलिखित है :-

1- अध्ययन हेतु चयनित दक्षताओं पर उपचारात्मक शिक्षण का प्रभाव होगा।

2- उपचारात्मक शिक्षण के पश्चात् विद्यार्थियों की दक्षता संबंधी उपलब्धि में अंतर होगा।

3- उपचारात्मक शिक्षण के पश्चात छात्रों की दक्षता संबंधी उपलब्धि में अंतर होगा।

4- उपचारात्मक शिक्षण के पश्चात छात्राओं की दक्षता संबंधी उपलब्धि में अंतर होगा।

5- उपचारात्मक शिक्षण के पश्चात छात्र/छात्राओं की दक्षता संबंधी उपलब्धि में अंतर नहीं होगा।

1.13 समस्या का सीमांकन -

इस अध्ययन हेतु समस्या का सीमांकन निम्नानुसार किया गया :-

1- प्रस्तुत अध्ययन गुजरात राज्य के जूनागढ़ जिले के मजेवडी गाँव तक सीमित है।

2- प्रस्तुत अध्ययन में एक प्राथमिक शाला को ही सम्मिलित किया गया है।

3- प्रस्तुत अध्ययन में कक्षा 5 के 40 विद्यार्थियों को लिया गया है।

4- प्रस्तुत अध्ययन कक्षा-5 गणित विषय की ज्यामितिय भाग के प्रथम अध्याय तक सीमित है।

5- प्रस्तुत अध्ययन में एक सप्ताह, डेढ़ घण्टा उपचारात्मक शिक्षण दिया गया।

1.14 चेप्टराइजेशन :-

प्रस्तुत लघु शोध के प्रथम अध्याय में शोध की प्रस्तावना लिखी, जिसमें न्यूनतम अधिगम स्तर, गणित में अधिगम स्तर, गणित का महत्व, शोध की आवश्यकता के साथ - साथ शोध के उद्देश्य, शोध परिकल्पनाओं एवं समस्या के सीमांकन आदि का उल्लेख किया गया है।

द्वितीय अध्याय के अंतर्गत अध्ययन हेतु चयनित समस्या से संबंधित पूर्व में किये गये कुछ शोध कार्यों का विवरण दिया गया है।

तृतीय अध्याय में अध्ययन की प्रविधि जिसके अंतर्गत शोध, अभिकल्प, प्रयुक्त चर, प्रतिदर्श, उपकरण, प्रदत्तों के संकलन व प्रयुक्त सांख्यिकी का उल्लेख किया गया है।

चतुर्थ अध्याय में अध्ययन हेतु की गई परिकल्पनाओं का विश्लेषण कर उनकी व्याख्या की गई।

पंचम अध्याय में शोध सारांश, शोध से प्राप्त निष्कर्ष तथा भावी शोध हेतु सुझाव दिये गये है।

अंत में संदर्भ ग्रंथ सूची व परिशिष्ट का विवरण दिये गये है।